REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2023

बौद्ध धर्म के सिद्धान्त का अध्ययन

पुनीत राजवंशी[1] , डॉ. श्रीमती पुष्पा दुबे[2]
[1]शोधार्थी इतिहास,शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.).
[2]सहायक प्राध्यापक इतिहास, राजभानु सिंह स्मारक महाविद्यालय, मनिकवार, जिला रीवा (म.प्र.).

सारांश –

भारतीय मानव समाज प्राचीन समय से लेकर अब तक धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि मानव समाज द्वारा नैतिक नियमों का सकुशल पालन करने से ही मानव का कल्याण होना सम्भव हो सकेगा। धर्म, वर्ण व जाति, संस्कारों की व्यवस्था एवं आश्रम समाज तथा मनुष्य दोनों पर ही उस समय आश्रित थी। भारत के सम्बन्ध में लिखने वाले सबसे प्राचीन लेखक यूनानी थे, जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण विवरण मेगस्थनीज का है। मानव समाज के पतन व उत्थान एवं विकास में धर्मों का अत्यन्त महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। प्राचीन काल में धर्म सम्बन्धी अवधारणा बहुत विस्तृत थी तथा उन्हीं के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जगत नियंत्रित था।

मुख्य शब्द – भारतीय, समाज, बौद्ध धर्म एवं सिद्धान्त ।

प्रस्तावना –

प्राचीन समय से ही भारतीयों का जीवन धर्मगत उत्कण्ठा से प्रभावित रहा है, जिनमें मानवों के आचरण युक्त अभिव्यक्तियों, जगत नियन्ता के प्रति समर्पण की प्रबल भावना तथा नैतिक मूल्यों का समावेश था। उस समय में पूरा राष्ट्र व मानव समाज धर्म के व्यापक आयाम में क्रियाशील रहा है। समाज के लोगों द्वारा धर्म के व्यावहारिक महत्व को समझा एवं कर्तव्यों का उचित पालन किया जाता था, जिसके सहयोग से मानव लौकिक उत्कर्ष के साथ–साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ जीवन व्यतीत करता है। मानव के सम्पूर्ण कर्तव्य एवं कर्म ज्ञान से परिपूर्ण व श्रद्धा से पूर्ण होकर धर्म से ही प्रेरित और गतिमान होते थे, जो उसके पूरे परिवार एवं समाज को संगठित करने में महत्वपूर्ण योगदान देते थे।[1] ऐसी दशा में ज्ञान से ओत प्रोत नैतिक आचार विचार से प्रभावित और सतकर्म से प्रेरित मान्यतायें व स्थापनायें मानव की धर्म परायणता को उद्‌भासित करती रही है। वास्तव में सुनिश्चित स्वरूप में मानव की ऐसी अभिव्यक्ति उसकी धर्म में आस्था रही है। इस धर्म परायणता से मानव के जिन मूल्यों, आयामों, स्थापनाओं एवं मान्यताओं का बोध होता है, उन्हीं के सदृश्य मानव कर्म करने की ओर प्रवृत्त करता है।

बुद्ध के जीवन के सत्य का दर्शन हुआ। उन्हें दुःख और दुःख–निरोध का उपाय विदित हुआ। बुद्ध को बोधि की प्राप्ति इतने आकस्मिक ढंग से हुई कि इसे अद्‌भुत माना जाता है। तत्व–ज्ञान अर्थात् बोधि प्राप्त कर लेने के बाद वे बुद्ध की संज्ञा से विभूषित किये गये। इस नाम के अतिरिक्त उन्हें तथागत (जो वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जानता है) तथा अर्हत की संज्ञा से भी सम्बोधित किया गया।

सत्य का ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद बुद्ध ने लोक–कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने सन्देश को जनता तक पहुँचाने का संकल्प किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने घूम–घूम कर जनता को उपदेश देना आरम्भ किया। दुःख के कारण और दुःख दूर करने के उपाय पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने दुःख से त्रस्त मानव को दुःख से छुटकारा पाने का आश्वासन दिया। बुद्ध के उपदेशों के फलस्वरूप बौद्ध–धर्म का सूत्रपात हुआ। बौद्ध धर्म सर्वप्रथम भारत में फैला। बौद्ध धर्म का भारत में पनपने का मूल कारण उस समय के प्रचलित धर्म के प्रति लोगों का असन्तोष था। उस समय भारत में ब्राह्मण धर्म का बोलबाला था जिसमें बलि–प्रथाओं की प्रधानता थी। पशु–यहाँ तक कि मनुष्यों को भी बलि देने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता था। हिंसा के इस भयानक वातावरण में विकसित होने के कारण बौद्ध–धर्म जो अहिंसा पर आधारित था, भारत में लोकप्रिय हो सका। कुछ ही समय के बाद यह धर्म भारत तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु नृपों एवं भिक्षुओं की सहायता से दूसरे देशों में भी फैला। इस प्रकार यह धर्म विश्व–धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।[2]

बौद्ध संस्कृति, विशाल संस्कृति है, जिसका केन्द्र बिन्दु मनुष्य है। मनुष्य के अलावा कुछ नहीं। इसीलिये मानसिक, बौद्धिक सामाजिक आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों को विकसित कर परम शान्ति प्राप्त कराना बौद्ध धर्म का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जहाँ अन्य धर्म, मनुष्य को ईश्वर, परमात्मा, देवी–देवता, यज्ञ, नदी, वृक्ष आदि की शरण ग्रहण करने का उपदेश करते हैं, वहीं बौद्ध धर्म मनुष्य के अन्दर की ज्ञान प्रज्ञा शक्ति को जगाकर उसे स्वयं अपनी स्वामी बनने का उपदेश करता है। यही बौद्ध धर्म की अन्य धर्मों से भिन्नता और श्रेष्ठता है।[3]

स्वतंत्रता, समानता, न्याय, करूणा और बन्धुता के सिद्धान्तों को आधार मानकर चलने वाला बौद्ध धर्म दुनियां के लगभग सभी देशों में पहुँचा और फूला–फला। लेकिन कहीं भी एक बूँद तक रक्तपात नहीं हुआ। संसार की कराहती हुई मानवता और विनाश की कगार पर खड़े हुए देशों के लिये बौद्ध धर्म ही शरणस्थली बना। इसीलिये पाश्चात्य देशों के युवक और स्वतंत्र चिन्तक, बौद्ध धर्म की ओर दौड़ रहे हैं जिसका उदाहरण पाश्चात्य देशों में बौद्ध धर्म का बढ़ता हुआ प्रभाव है।

विश्लेषण –

बुद्ध के धर्म सिद्धांत और ज्ञान दर्शन की आधारशिला नैतिकता थी। त्रिपिटक में बौद्ध धर्म की चिन्तन पद्धति पर सविस्तार विचार किया गया है तथा उसके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध चिन्तन पद्धति आचारशास्त्र के अधिक निकट है। समकालीन मतवैभिन्य को देखते हुए बुद्ध ने अपने अनुयायियों को सम्बोधित किया था कि, भिक्षुओ, इसे कहते हैं मतों में जा पड़ना, मतों की गहनता और मतों का अन्तर, मतों का दिखावा, मतों का फन्दा तथा मतों का बंधन। इस मतों बंधन में बंधा हुआ मनुष्य, जिसमें सद्धर्म को नहीं श्रवित किया, वह जन्म, जरा और मरण से मुक्त नहीं होता। शोक से, रोने–धोने से, पीड़ित होने से, चिन्तित होने से भी वह मुक्त नहीं होता। मैं कहता हूँ कि वह दुःख से विमुक्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में बौद्ध दर्शन बुद्ध के पश्चात् विकसित और व्यवस्थित हुआ। महात्मा बुद्ध मानवतावाद के प्रबल व्याख्याकार थे तथा मनुष्य के उत्कर्ष के लिए निरन्तर सोचा करते थे। उसके चिन्तन में धर्म ही मनुष्यों में श्रेयस्कर था, इस जन्म में भी और उस जन्म में भी।[4] उनके अनुसार मानव का लौकिक और पारलौकिक उत्कर्ष धर्म की आधारशिला पर होता है। मनुष्य के लिए इस जन्म और दूसरे जन्म के लिए धर्म ही श्रेयस्कर है।[5]

इस प्रकार वह जीवन का विषय है, मृत्यु का नहीं। उसका निर्वाण इसी जन्म में होता है। वस्तुतः बुद्ध का धार्मिक चिन्तन और तर्क बुद्धिवाद पर आधारित था। धर्म और अधर्म की जितनी तार्किक व्याख्या बुद्ध ने की उतनी किसी और ने नहीं। महाप्रजापति गौतमी को उपदेश देते हुए उन्होंने उपज्ञित किया था, हे गौतमी, जिन धर्मों को तू समझे कि ये सराग के लिए हैं, विराग के लिए नहीं हैं, वियोग के लिए नहीं हैं, असग्रंह के लिए नहीं, इच्छाओं को उद्दीप्त करने के लिए हैं, कर्म करने के लिए नहीं हैं, अनध्यवसाय के लिए हैं, अध्यवसाय के लिए तो तुम गौतमी पूर्णतः जानना कि वे ना तो धर्म हैं, न विनय हैं, न शास्ता के शासन हैं, किन्तु इनसे विपरीत जो धर्म हैं, अर्थात् जो विराग के लिए है, अध्यवसाय के लिए हैं, तो उन्हें तू शत–प्रतिशत समझना कि वे तथागत के धर्म हैं, विनय हैं, शासन हैं।

बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति है जो बौद्ध सिंद्धान्तों और आचारों के पालन से सम्भव है। निर्वाण का मार्ग उपनिषदों में प्रतिपादित मार्ग से पृथक नहीं है। बुद्ध ने विद्या और ज्ञान के महत्व को स्वीकार

करते हुए समस्त दुःखों और अज्ञान का उनके आलोक से समाप्त होना माना है तथा ज्ञान से ही मुक्ति स्वीकार की है। बुद्ध ने ज्ञानोत्पत्ति के लिए शरीर–शुद्धि पर बल दिया और शरीर–शुद्धि शील के आचरण से संभव थी। शील का अर्थ साधक के समस्त सात्विक कर्मों से था। भिक्षु और उपासक दोनों के लिए शील का अनुपालन अपेक्षित था। शील के साथ–साथ समाधि और प्रज्ञा का भी निवेशन किया गया था। प्रज्ञा के तीन प्रकार बताए हैं, श्रुतमयी, चिन्तामयी ओर भावनामयी। महात्मा बुद्ध का कथन है कि प्रज्ञा के अनुष्ठान और उसके जीवन्त होते से ज्ञान–दर्शन, मनोरम शरीर का निर्वाण, ऋद्धियां, दिव्यश्रोत्र, परिचिति–ज्ञान, पूर्वजन्म–स्मरण और दिव्य चक्षु की प्राप्ति होती है तथा उपरान्त दुःखक्षय का ज्ञान हो जाता है। उस स्थिति में चित्त विमल और शुद्ध हो जाता है तथा कामाश्रव (भोगने की इच्छा), भवाश्राव (जन्म प्राप्त करने की इच्छा) और अविद्याश्रव (अज्ञान) से सर्वदा के लिए विमुक्त हो जाती है। तदुपरान्त उसे निर्वाण प्राप्त हो जाता है।[6]

बौद्ध दर्शन में शील, समाधि और प्रज्ञा 'त्रिरत्न' के नाम से जाने जाते हैं। अन्य धर्मों के अनुसार निर्वाण की प्राप्ति मृत्युपरान्त होती है, किन्तु बौद्ध के अनुसार यह इसी जीवन में सम्भव है। भगवान बुद्ध निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी बहुत दिनों तक जीवित थे। निर्वाण में आस्त्रवों, एषणाओं, राग–द्वेष–मोह संयोजव तृष्णा, कर्म, भव, नाम–रूप उपाधि, संस्कार आदि अशेष का निरोध हो जाता है। विद्या से क्लेश समाप्त हो जाता है। वस्तुतः निर्वाण जीवन की समस्या है तथा मुक्ति का दूसरा नाम है।[7] इसकी प्राप्ति से जीव जीवन और मरण से छुटकारा पा जाता है और उसे मुक्ति मिल जाती है। वह अमृत के समान है। इसी प्राप्ति के बाद जीव को किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसकी पूर्णतः सन्तुष्टि हो जाती है और वह समस्त बंधनों से रहित होकर मुक्त हो जाता है। इस प्रकार गौतम बुद्ध के उपदेश समस्त भारतवासियों के मस्तिष्क पर अपना उत्तम प्रभाव छोड़ने में सक्षम था और उनके बौद्धिक विचारों से विन्ध्य क्षेत्र भी प्रभावित था, जिसका प्रमाण अवशेषों के रूप में यहाँ विद्यमान है।

भारतीय समाज में जाति–पांति, छुआछूत की अवधारणा को दूर करने में बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दू धर्म में भी कर्मकाण्ड और धार्मिक पाखण्डों में कालान्तर में कमी आने लगी जो बौद्ध धर्म की ही देन है। बौद्ध धर्म के कारण मध्यप्रदेश में सांस्कृतिक परिवर्तन होने लगे थे जिसके कारण, जाति व्यवस्था, अमानवीय छुआछूत, हिंसाचार, विषमता आदि आधारभूत हिन्दू मान्यताओं के सांस्कृतिक कारागृह से बौद्ध धर्मानुयायी मुक्त हो गए। बौद्ध धर्म विज्ञानवाद पर आधारित है। आईनस्टाईन आधुनिक काल के एक महान वैज्ञानिक हैं। उनके सापेक्षतावाद के सिद्वान्त के कारण वैज्ञानिक क्षेत्र में बहुत बड़ी क्रान्ति हुई। विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईनस्टीन महोदय ने अपने सिद्वान्त का श्रेय भगवान बुद्ध के प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त को दिया। आईनस्टाईन के अनुसार बुद्ध ने सर्वप्रथम विश्व में वैज्ञानिक पद्धति से विचार किया।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः गौतम बुद्ध संसार तथा प्राणी के प्रति व्यावहारिक दृष्टि रखते थे। उनके भिन्न–भिन्न उपदेशों तथा प्रवचनों में उनके दर्शन की सुस्पष्ट झलक पायी जाती है। गौतम बुद्ध की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे साक्ष्यों के द्वारा दुरूह से दुरूह विषय को सुबोध तथा सरल स्वरूप में व्याख्या करते थे। उन्होंने संसार तथा जीवन को स्वीकार किया और इस परेशानी में अपने आप को नहीं डाला कि मानव अमर है अथवा नश्वर, शरीर तथा जीव एक है अथवा भिन्न, ससीम है अथवा असीम एवं अर्हत मृत्यु के पश्चात बना रहता है या उसके साथ विनष्ट हो जाती है। फलतः उनका प्रमुख धर्म था मोझ के रास्ते का निर्देशन करना। गौतम बुद्ध के धर्म का लक्ष्य मानव को सांसारिक कष्ट तथा वेदना से स्वतंत्र करना था। वह संसार में ऐसे आध्यात्मिक ज्ञान का आलोक पैदा करना चाहते थे जिससे वासना तथा स्पृहा का विनाश हो। गौतम बुद्ध वे सार्वभौम उत्थान में विश्वास रखते थे, अतएव सम्पूर्ण मनुष्य को सत्य के समीप लाना चाहते थे। आचार तथा शील के गौतम बुद्ध समर्थक थे और वह यह मानते थे कि इसके बगैर मानव का जीवन युक्तियुक्त नहीं हैं। वे संयम तथा त्याग को जीवन की सराहना करते थे। गौतम बुद्ध ब्रह्मचर्य तथा निवृत्ति के अनुपालन करने का उपदेश देते थे। गौतम बुद्ध नीरक्षीर विवेकी होना और अच्छे–बुरे की पहचान से कार्यशील होना मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म मानते थे। उन्होंने क्या उचित है क्या अनुचित है इस पर गहन विचार कर और अपने किसी कार्य से दूसरे लोगों को दुःखी न करना इस पर सोचना मानव हेतु आवश्यक बतलाया। जिस कार्य से लोगों का हित हो वही कार्य उचित है एवं जिस कार्य से अपनों को, दूसरों को आघात एवं पीड़ा मिलती है, वह कार्य उचित नहीं होता है।

संदर्भ –

[1] बेवर, मैक्स, रिलिजन्स अन इण्डिया, 1997, पृष्ठ 53–65
[2] डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 2
[3] के.सी. श्रीवास्तव – प्राचीन भारत का इतिहास, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, संस्करण 2001–02, पृष्ठ 292
[4] मज्झिम निकाय, 1.1.1
[5] दीघनिकाय, 3.5
[6] डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय – बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ 82, 83
[7] डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 2